*International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)*
*ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714*
*www.ijhssi.org ||Volume 10 Issue 10 Ser. I ||October, 2021 || PP.74-77*

# धर्म की अवधारणा तथा धार्मिक शिक्षा की प्रासंगिकता

## डॉ. अपर्णा त्रिपाठी,

एसो. प्रोफेसर, शिक्षा शास्त्र विभाग, ए.के.पी.जी.कॉलेज,हापुड़

**सारांश**

आदिकाल से ही मानव जीवन में धर्म का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। मानव धार्मिक अनुभूति कर जीवन में संतोष, सुख, आनंद आदि प्राप्त करने में समर्थ होता है। शिक्षा और धर्म का संबंध सदैव ही घनिष्ठ रहा है। प्राचीन काल में भारतीय जीवन का प्रत्येक पक्ष और शिक्षा धर्म से अनुप्राणित था। आजकल धर्म केवल कुछ पूजा विधियों और आस्थाओं में सिमट गया है। परतंत्रता तथा नवीन विचारधाराओं के कारण धार्मिक सिद्धांतों का प्रभाव कम हुआ है। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ, धर्मविहीनता हो गया जिसके परिणामस्वरूप अनुशासनहीनता, हिंसा की वृद्धि तथा सामाजिक मूल्यों का ह्रास हुआ है। धर्म के सामाजिक और शैक्षिक कर्तव्य अर्थात धार्मिक शिक्षा द्वारा इन समस्याओं का समाधान संभव है।

**संकेत शब्द***:* धर्म, संप्रदाय, नैतिकता, धर्मनिरपेक्ष

Date of Submission: 18 October 2021 Date of Acceptance 27-10-2021

वर्तमान समय में सामान्य रूप से धर्म का आशय किसी अलौकिक शक्ति जिसे प्राय: ईश्वर की संज्ञा दी जाती है, पर विश्वास है, जिसका आधार भय, प्रेम, श्रद्धा, संस्कार एवं परंपराएं आदि हैं तथा जिसकी अभिव्यक्ति पूजापद्धति तथा जीवनचर्या से होती है। धर्म, मत और संप्रदाय को पर्यायवाची के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। धर्म के दो पक्ष हैं- आंतरिक एवं बाह्य। आंतरिक पक्ष के अंतर्गत मानव के धार्मिक विश्वास-विचार- श्रद्धा आदि का समावेश होता है। बाह्य पक्ष के अंतर्गत उपासना विधि, धार्मिक कर्मकांड, पूजा स्थल आते हैं, इन के माध्यम से मनुष्य धार्मिकता की अभिव्यक्ति करता है। धर्म' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा की' धृ' धातु से है जिसका अर्थ-'धारण करना है' अर्थात जो धारण करने योग्य है, वही धर्म है। सामान्यतः 'रिलिज़न' शब्द को धर्म के समानार्थी के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द 'रेलिगेयर' से हुई है, इसका अर्थ है-एक साथ बांधना अर्थात व्यक्ति को प्रेम और कर्तव्य के बंधन में रखना। मजहब शब्द का प्रयोग भी समानार्थी के रूप में किया जाता है जिसका अर्थ पंथ या संप्रदाय है। मजहब से तात्पर्य इस्लाम के उन संप्रदायों से है जो इस्लामी विधि शास्त्र के आधार पर वर्गीकृत हैं।

**आधुनिक चिंतन व धर्म:**

धर्म के प्रति विचारकों तथा धर्मावलंबियों में वैभिन्य रहा है। कुछ विचारकों ने इसे वास्तविक सुख व शांति का प्रदायक, नैतिकता का पर्याय, दुर्गुणों का परिमार्जक तथा मानवता का कल्याण करने वाला माना है तो कुछ विचारकों ने इसे मानव की उन्नति का रोड़ा, आदिम चिंतन तथा गरीब को दी गई अफीम कहा है।

प्रसिद्ध विचारक सुकरात ने धर्म व दर्शन को परम कल्याण करने वाला, ज्ञान का प्रदायक तथा ज्ञान के प्रकाश में मानव जाति का सुधार करने वाला माना है। इससे बुद्धि का विकास, व्यक्ति के स्वभाव का परिमार्जन तथा सामूहिक कल्याण होता है। सुकरात के मत में ईश्वर तथा नीति मानवता को अमर्यादित होने से बचाते हैं। कन्फ्यूशियस ने धार्मिक विचारों को एक सुनियोजित विश्व के निर्माण में आवश्यक समझा है। कन्फ्यूशियस के मत में इन विचारों से व्यक्ति का परिष्कार, परिवार कल्याण, राज कल्याण तथा विश्व कल्याण तक संभव है। कुछ विचारक धर्म को नैतिकता की दृष्टि से देखते हैं, इमानुएल कांट के शब्दों में- धर्म

हमारे सभी कर्तव्यों को ईश्वरीय आदेशों के रूप में मान्यता देता है। शुभ इच्छा शक्ति तथा विवेक बुद्धि पर आधारित कर्म ही नैतिक दृष्टि से श्रेष्ठ होते हैं।नैतिकता की अर्थ पूर्णता ईश्वर के अस्तित्व का अवधारणा पर निर्भर करती है। किलपैट्रिक ने धर्म को एक सांस्कृतिक संरचना माना है जो कि असाधारण मानव मूल्यों की ओर संकेत करती है। रायबर्न के शब्दों में -धर्म ही नैतिकता को जीवन दान देता है, मनुष्य को अच्छा कार्य और अच्छा आचरण करने की प्रेरणा धर्म से ही मिलती है, कौन सा कार्य अच्छा है और कौन सा कार्य बुरा इसका मानदंड धर्म ही होता है। धर्म के द्वारा ही नैतिकता का विकास होता है, यदि धर्म को नैतिकता से पृथक कर दिया जाए तो नैतिकता का अंत हो जाएगा। कुछ विचारक सामाजिक दृष्टि से धर्म का अवलोकन करते हैं तथा धर्म की प्रासंगिकता सामाजिक-मानवीय दृष्टि से प्रतिपादित करते हैं। प्रसिद्ध विचारक बर्ट्रेंड रसेल ने विश्व, समाज,मानवजाति के परिप्रेक्ष्य में उदात्त धार्मिक विचारों को वांछनीय माना है। इसी प्रकार खलील जिब्रान ने माननीय सदाचरण, मानवीय धारणाओं, दैनिक जीवन तथा सामाजिक प्राकृतिक परिवेश में धर्म को पाया है।

कुछ विचारकों का मत उपर्युक्त के विपरीत है, उन्होंने धर्म को अंधविश्वास गुलामी तथा नशे की संज्ञा दी है। प्रसिद्ध दार्शनिक नीत्शे ने धर्म को विक्षिप्तता बताया है जिसने जन सामान्य ही नहीं, बौद्धिकों को भी आकर्षित किया है तथा इन सब ने मिलकर बेहूदगी तथा अंधविश्वास के कूड़े के ऊंचे ऊंचे ढेर लगा दिए हैं। धार्मिकता द्वारा विचारों की स्वाधीनता, आत्मा के आत्मविश्वास तथा विवेक की बलि ले ली जाती है। धर्मरूपी महामारी के विश्व में फैलने का सबसे बड़ा कारण इस अंधविश्वास का प्रसार है कि वह बुरे व्यक्ति को संत बना देती है। भय ने भी इस प्रसार में योगदान दिया है। धर्म व ईश्वर के प्रति निष्ठा उन लोगों की होती है जो निहायत बोदे और भोले किस्म के होते हैं तथा जिन में चुनौती देने वाली जिज्ञासा नहीं होती। ऐसे लोग पदोन्नति पाए हुए गुलाम होते हैं। मानव इतिहास में थोड़े लोगों द्वारा बहुत ज्यादा लोगों को आगे जाने की परंपरा रही है। सभी युगों में "भेड़ों के रेवड़ों" का अस्तित्व रहा है। धर्म को एक विज्ञान का रूप बताने की कोशिश की जाती है जबकि वह मात्र जहालत की टोकरी भर है। कार्ल मार्क्स ने धर्म की मीमांसा करते हुए कहा है - धर्म वर्ग विहीन समाज की उन्नति में रोड़ा है। धार्मिक दृष्टिकोण जीवन के अर्थ, प्रयोजन और उद्देश्य के वैज्ञानिक सत्य का मिथ्याकरण है। मार्क्स के मत में धर्म एक पीड़ित प्राणी की सिसकी है,यह गरीबों की अफीम है। ऐंगल्स के मत में धर्म का पहला शब्द ही झूठा होता है यह एक भ्रामक काल्पनिक आनंद देता है। लेनिन ने धर्म को आंशिक अत्याचार का एक पहलू बताया है। जो लोग सारा जीवन परिश्रम करते हैं किंतु फिर भी तंगी का जीवन जीते हैं, धर्म उन्हें विनम्रता और धैर्य की शिक्षा देता है तथा उन्हें स्वर्ग में पुरस्कार मिलने की आशा द्वारा उनके आंसू पोंछता है। परमात्मा तथा पारलौकिक जीवन के प्रति निष्ठा शोषितों का ध्यान दूसरी ओर हटा देती है। धर्म शोषितों को पूंजीवादी व्यवस्था का दास बनाता है।

**भारतीय चिंतन व धर्म:**

भारतीय ज्ञान परंपरा और संस्कृति में 'धर्म की अवधारणा', संप्रदाय की समानार्थी नहीं है। जिससे इस लोक तथा परलोक दोनों में कल्याण की प्राप्ति हो, वही धर्म है, यह प्रत्यय हमारे ऋषियों ने दिया। धर्म का आशय है जिसे धारण किया जाए, आलंबन किया जाए तो यह निर्धारित करना भी अत्यावश्यक है क्या धारण किया जाए और क्या धारण न किया जाए। किसी वस्तु की विधायक आंतरिक वृत्ति ही धर्म है।प्रत्येक पदार्थ जिस वृत्ति पर निर्भर है, वही उसका धर्म है। धर्म की कमी से उस पदार्थ का क्षय होता है तथा धर्म की वृद्धि से उस पदार्थ की वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ बेला के फूल का एक धर्म सुवास है, इसकी वृद्धि उसकी कली का विकास है तथा इसकी कमी फूल का ह्रास है धर्म की उक्त कल्पना वैदिक धर्म की विशेषता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार धर्म वह है जिससे इस जीवन का अभ्युदय तथा भावी जीवन में नि:श्रेयस की सिद्धि होती है।वेद तथा स्मृति आदि के द्वारा प्रतिपादित वचनों को धर्म माना गया है तथा उसी के द्वारा अधिनियमित होने का विधान किया गया है। लोक व्यवहार के अनुरूप इसे वर्गीकृत कर दिया गया है और धर्म आधारित जीवन का प्रतिपादन किया गया है तथा इसे ही कल्याण कारक माना है। श्रुति, स्मृति, सदाचार एवं आत्म संतुष्टि, यह

साक्षात धर्म के चार लक्षण कहे गए हैं, यही जीवन यात्रा के पथ प्रदर्शक हैं। उक्त लक्षणों में प्रथम दो किसी ना किसी रूप में सभी धर्मों के प्रमाण माने जाते हैं। शेष दो सदाचार तथा आत्म संतुष्टि को समस्त सभ्यसंसार अपनी परिस्थिति के अनुकूल प्रमाण मानता है।

लोक जीवन के संचालन के लिए धर्म के दो वर्ग प्रस्तुत किए हैं, प्रथम सामान्य धर्म, यह सभी मानवों के लिए निर्विवाद रूप से उचित हैं, इनके पालन से मानव समाज की रक्षा होती है। द्वितीय विश्व धर्म, समाज की सुंदरता के लिए जीवन के विविध कार्यों तथा अवस्थाओं के अनुरूप वर्ण तथा आश्रमों के कर्तव्यों का निरूपण किया गया है, इन्हें विशिष्ट धर्म कहते हैं। इन धर्मों का आरंभ गर्भाधान संस्कार से होता है तथा अंत अंन्त्येष्टि व श्राद्ध आदि से होता है। धर्म व्यक्ति की तरह समाज का भी विधायक है इस प्रकार धर्म की अपरिहार्यता व्यक्ति व समाज को विकसित, सुसंस्कृत व समुन्नत करने के दृष्टिकोण से स्वीकार की गई है। धर्म शब्द का प्रयोग धार्मिक विधि, निश्चित नियमों, व्यवस्था सिद्धांत तथा आचरण नियम के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। मनुस्मृति में धर्म के 10 लक्षण बताए गए हैं धैर्य, क्षमा, शांति,लोभ न करना, शुद्धता, इंद्रिय निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध। चार पुरुषार्थों (पुरुषार्थ का अर्थ है- पुरुष द्वारा करने योग्य) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में धर्म सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यहां धर्म का अर्थ है जीवन का नियामक तत्व, अर्थ का तात्पर्य है जीवन के भौतिक साधन, काम से आशय है जीवन की वैध कामनाएं और मोक्ष का अभिप्राय है जीवन के सभी प्रकार के बंधनों से मुक्ति। अहिंसा परमो धर्मः, आचारः परमोधर्मः, नहिसत्यात्परो धर्मः ,जैसे श्लोक धर्म के दिव्यता को प्रमाणित करते हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व की उन्नति हेतु जिस आचरण की अपेक्षा की जाए, वही धर्म है।

**धार्मिक शिक्षा की प्रासंगिकता:**

सांप्रदायिकता और राजनीतिक कारणों से 1947 में स्वतंत्रता भारत विभाजन के दंश के साथ प्राप्त हुई। इस त्रासदी को देखते हुए संविधान में धर्म को शिक्षा से दूर रखा, गया जबकि आवश्यकता यह थी कि इसे राजनीति से दूर रखा जाता। यह सत्य है कि अंधविश्वास और संकुचित अर्थ में धर्म के संकल्पना को स्वीकार नहीं किया जा सकता किंतु सत्य व ज्ञान आधारित, व्यक्ति-समाज-राष्ट्र की उन्नति से संकल्पित धर्म को निश्चय ही शिक्षा में स्थान मिलना चाहिए। स्वतंत्रता के बाद तत्कालीन विचारकों और शिक्षाशास्त्रियों ने धार्मिक शिक्षा का समर्थन किया। लोकमान्य तिलक, स्वामी विवेकानंद, रविंद्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, श्री अरविंद, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन आदि सभी ने समस्त धर्मों में निहित महान विचारों का ज्ञान विद्यार्थियों को प्रदान करने वाली शिक्षा को आवश्यक माना है। धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा द्वारा बच्चों को संकीर्णता से निकालकर सर्वधर्म समभाव की स्वीकृतियों से परिचित कराया जाना चाहिए, यह संविधान की धर्मनिरपेक्ष भावना के अनुरूप भी होगा। शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है, वर्तमान शिक्षा प्रणाली व्यक्ति में वैज्ञानिक तर्क, भौतिकवाद की पोषक है किंतु यह भी सत्य है कि वह चारित्रिक गुणों के पतन, मानसिक अशांति, वैमनस्य असहिष्णुता, स्वार्थपरता और कर्तव्यविमुखता से पीड़ित है। इसके सामाजिक और आर्थिक दुष्परिणाम राष्ट्र की उन्नति को प्रभावित कर रहे हैं। धार्मिक शिक्षा का अर्थ विद्यालय को धर्म संस्था बनाना नहीं है। मानव धर्म- संवैधानिक धर्म- प्रजातांत्रिक धर्म के पोषण का उद्देश्य रखने वाली धार्मिक शिक्षा सदैव ही प्रासंगिक है।

**संदर्भ:**


- चौबे, सरयू प्रसाद(1959) दर्शन और शिक्षा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल,आगरा
- जाटव, डी.आर.(2010) प्रमुख पाश्चात्य दार्शनिक राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर
- कोहली, वी.के.(1987) इंडियन एजुकेशन एंड इट्स प्रॉब्लम्स, विवेक पब्लिशर्स, अंबाला
- लाल,रमन बिहारी, (1975) शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धांत रस्तोगी पब्लिकेशन मेरठ
- मनुस्मृति, (1932) मेधा तिथिभाष्य,एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता

- ओड , एल.के. (1994) शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठ भूमि, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी अकादमी जयपुर
- पाण्डेय आर. एस. (1976) शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- वशिष्ठ, के.के. (1990) विद्यालय संगठन एवं भारतीय शिक्षा की समस्यायें, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ
- याज्ञवल्क्य स्मृति, (1994) मिताक्षरा भाष्य, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी